कथा के गैरजरूरी प्रदेश में

अल्पना मिश्र

हिन्दी ADDA

कथा के गैरजरूरी प्रदेश में

'वहाँ क्या कर रही हो?'

यही वह आवाज है, जो उनके भीतर के सारे स्वरों को तोड़ देती है। कितनी मुश्किल से एक सुर पकड़कर साज पर बैठाती है और पलक झपकते सब बेसुरा। तो जहाँ से फैल गए थे, वहीं से अपने को सिकोड़ते हुए उनके हाथ वापस आ गए हैं।

यह क्या कर रही थीं वे, अपना मनचीता?

यहाँ मध्य प्रदेश का अपना उत्सव चल रहा है - पंचमढ़ी महोत्सव। गाँवों, शहरों से न जाने कितनी दूरी तय करके बूढ़े, जवान कलाकार हाथ, जाने कितनी तरह की चीजें लाए हैं। रॉक पेंटिंग्स, खिलौने, हैंडलूम, चंदेरी साड़ियाँ, जूट के सामान आदि की कितनी ही दुकानें सजी हैं। एक बारह-तेरह साल का लड़का जिस दुकान में बैठा चित्र बना रहा था, वे उसी के आगे ठहर गईं। उनका हाथ अपने आप चित्रों की तरफ फैल गया।

'तुमने बताया नहीं?'

वही पहले वाली आवाज उनके ऊपर गिरती है और वे सचमुच दंग हैं कि यह क्या करने जा रही थीं।

'क्या?'

'आते समय मम्मी ने कितना दिया था?'

'वही, एक सौ एक।'

'हूँ... आज एक सौ एक का कोई मूल्य है?'

'मेरे लिए तो तब भी नहीं था।'

उनकी आँखें भरसक सूनी हैं; मानो वे एक खामोश ज्वालामुखी पर बैठी हों! क्या अरुंधती, तुम्हें भी मूल्य समझाने के लिए यही जगह मिली - पंचमढ़ी उत्सव! क्या ऋषिकाओं ने ऐसे ही किसी भरे उत्सव में अपनी बात समझायी थी? एकांत की बहसों का प्रमाण क्या और सिद्धि क्या?

इस जीवन को चाहे तुम जिस नाम से पुकारो। कुछ भी; जो है, जो रहेगा, उसे स्वार्थ कहो, परवशता या जीवन सत्य। वह सत्य, जिसके पीछे जगत गुरु निकल पड़े हैं। जिसे तृण-भर जानने को तुम विकल हो। वह विराट सत्य! कभी हाथ न आने वाला

सत्य! इतनी आसानी से उसके मूल को हथियाने की सोचती हो? तो सुनो मूर्खा! अभी जाने कितना अभावित, अघटित बचा पड़ा है।

गुरु जगत एक पाँव घुटने से मोड़कर जमीन पर रखे हुए हैं और दूसरा घुटने से थोड़ा उठाकर। हिरनों का एक जोड़ा हाथों में उठाए उसे मुग्ध-भाव से निहार रहे हैं। हिरन सुंदर हैं और जगत चाहते हैं कि कच्चे लोहे के ये हिरन उनकी बैठक में सजें।

'ये जल्दी टूट जाएँगे।'

'इतनी जल्दी भी नहीं।'

'लाओ।'

' ? '

लाचारी से जगत ने बस्तर के उस बूढ़े कलाकार को देखा।

'रहने दो बाबा!' और हिरनों को वहीं छोड़ दिया। पैंट की धूल झाड़ते व उठ खड़े हुए - 'अब लाओ।'

उन्होंने विवश होकर पर्स से वही सौ का नोट निकाला, जो माँ ने मायके से लौटते समय कोइछा में डाला था। अब कैसे न देतीं, जगत ने अपना मन मारा था। हिरन युगल का खयाल छोड़ दिया था।

'देखिए, इधर-उधर मत खर्च करिएगा।'

'रहने दो अपना लेक्चर। मैं भी रोज स्कूल में सद्‌वचन बाँचता हूँ।' चिढ़कर उन्होंने सौ का नोट झपट लिया।

'साला चौधरी का बाप, पैसा बाँधकर परलोक जाएगा।'

अनजाने, बेहद स्वाभाविक तौर पर और आदतन गुरु जगत ने अपने स्कूल के मैनेजर को गाली दी और आगे बढ़ गए। पीछे-पीछे तेज कदमों से लगभग दौड़ती हुई अरुंधती।

यही स्कूल का मैनेजर चौधरी है, जो आठ से अट्‌ठाईस सौ का वेतन हर महीने गुरु को घिस-घिसकर पकड़ाता है और ऊपर से दहाड़ता है - 'लफंगई छोड़ दो गुरु, विद्‌यालय का वातावरण स्वच्छ हो जाएगा।'

अब क्या तो स्वच्छ होगा विद्यालय का वातावरण और कौन कर पाएगा इसे स्वच्छ? इसी आठ से अट्ठाईस सौ रुपये में से तमाम निराशाएँ, कुंठाएँ भरभराकर जन्म देती हैं और उठती-गिरती इसी स्कूल के मैदान में डोलती हैं। अब कहाँ बाँधकर रख आएँ इन विरूप खरोचों को। ये खरोचें ही तो गुरुओं की भाषा का संस्कार करती हैं और महलों में रहनेवाले राम रूपों को भरमाए रखने का तंत्र-मंत्र सिखाती हैं और मौका लगे तो पाँव दबवाने से भी नहीं चूकतीं।

आखिर इसमें गुरु की क्या गलती? यही कि चोरी-चकारी नहीं सीख पाए, नेताओं की चरण-पादुका लेकर पीछे-पीछे नहीं चल पाए। अपने सामर्थ्य भर ही पढ़ सकते थे, पढ़े भी। सोर्स-फोर्स था नहीं। कॅम्पिटिशन मे निकलना तो दूर की बात। अपनी समझ से वे कॅम्पिटिशन में निकल जानेवालों को कुछ अलग ही किस्म के लोग मानते थे। कभी-कभी गुस्से में वे यह भी सोचते थे कि सरकार क्यों नहीं इन कुकुरमुत्ते जैसे स्कूलों पर बैन लगा देती। न रहेंगे स्कूल, न उन्हें जीना पड़ेगा ऐसा अपमानजनक जीवन। पर उसी क्षण वे हड़बड़ाकर चैतन्य हो जाते कि इसी आठ से अट्ठाईस सौ वाली नौकरी से जैसे-तैसे गाड़ी चल रही है। कुछ घर के राशन-पानी, पैसों का सहारा है, कुछ ट्यूशन का और कुछ चौधरी का। स्कूल बंद हो जाएँगे तो क्या होगा उनका, उन जैसों का। अरे कौन सा भविष्य बनाकर रख देंगे यहाँ के बच्चे और कौन सा भविष्य बनाकर रख दिए हमारे गुरु जगत!

कॉन्वेंट स्कूल पढ़कर क्या हुआ? सारे के सारे वहाँ से निकलते अमेरिका चले गए क्या? माँ-बाप का पैसा अलग गारत हुआ। जो नहीं गए तो यहीं कि मिट्टी में से बीनेंगे, खाएँगे, जुगाड़ेंगे। कौन जाने उन छोटे-छोटे कॉन्वेंट स्कूल मास्टरों की कौन कुगति है? जब उनके बच्चे अँग्रेजी रटकर रह जाते हैं, सरकारी स्कूलों के बच्चे धूल खाकर रह जाते हैं, तो भला चौधरी टाइप मैनेजरों के व्यक्तिगत स्कूलों के बच्चे कौन सा कुबेर का खजाना जीतकर रख देंगे? या क्या पता... ? नेतागिरी, तस्करी के रास्ते इस देश में क्या नहीं संभव है। जब सब संभव ही है तो जगत गुरुओं के ही पेट पर नजर क्यों?

वे तो रोज अपना ही स्कूल खोलने का सपना देखते हैं। शिक्षा से बड़ा व्यवसाय भला कौन सा है, आम के आम गुठलियों के दाम।

विचारमग्न गुरु अचानक रुके।

'देखो उधर, चोरकटवा लग रहा है।'

उन्होंने अचरज से उधर आते हुए लगभग सबको देखा। लगभग हर चेहरे पर चोरकटवा का चेहरा फिट करने की कोशिश की। मगर बेकार। सब एक जैसे लगे।

'तुम कैसे जानोगी। हमारे बचपन का यार था, चोरी-चकारी में उस्ताद।' वे पुलक से नहा उठे।

'वीरेंदर... वीरेंदर सिंह।' गुरु धीरे-धीरे चीखे।

तभी भीड़ से निकलकर उत्साह से लड़खड़ाते, काले भुजंग पहलवान समान परम पुरुष ने जोर से गुरु को गले लगाया।

'सुने रहे कि यहाँ हो, मगर ठीक पता नहीं था।'

'मटकुली में हूँ, मेला देखने... '

दरअसल 'मटकुली' कहते ही वे सकुचा गए थे। परम पुरुष मुंबई में और वे मटकुली - कहाँ का न्याय है ईश्वर?

'कल निकल रहे हैं, मटकुली स्टेशन पर मिल लेना। समय कम है, नहीं तो आते।' यह कहते हुए एक उपेक्षाभरी दृष्टि अरुंधती पर डालकर बोले - 'भाभी हैं? नमस्ते!'

परम पुरुष के घर न आ पाने की बात सुनते ही गुरु जगत अपने संकोच से उबरने लगे। अन्यथा एक क्षण पहले ही घर-दुआर से लेकर औकात तक उनकी आँखों के सामने नाच उठी थी।

तीजन बाई बड़ी तेज-तेज पंडवानी गा रही हैं। उनकी गर्जन-तर्जन से भरी स्वर लहरियाँ भीड़ को भेदती गूँज रही हैं। लगभग तेरह-चौदह बरस की लड़कियों का एक झुंड आइसक्रीम ठेले के सामने खड़ा हँसता-खिलखिलाता और बीच-बीच में पंडवानी की आवाज पर चौंकता आइसक्रीम खा रहा है। जगत बार-बार चोरी से उधर देख रहे हैं। कुछ लड़कियाँ चेहरे और काठी से अच्छी लग रही हैं। उनमें से कुछ ज्यादा ही अच्छी है। जितनी बार जगत की चोर निगाहें उधर जाती हैं, उतनी ही बार अरुंधती भी चोर निगाहों से उधर देखती हैं। उधर लड़कियों के झुंड में से भी एक चोर निगाह इधर उठती है। यह देखने के लिए कि गुरु, जो अपनी पत्नी के साथ खड़े हैं वहाँ, वे क्या कर रहे हैं और क्या अब भी देख रहे हैं? उसकी बात सही निकलती है। अचानक झुंड में हँसी का फव्वारा छूटता है और सीधा आकर उनके ऊपर गिरता है। मन होता है

अरुंधती का कि यहाँ से भाग जाएँ कहीं दूर - इन छूटते फव्वारों से दूर, जहाँ जगत गुरु उन्हें बुला न सकें और बुलाएँ भी तो वे आ न सकें। कुछ समझ में नहीं आ रहा है।

वे अजीब भ्रमित-सी इधर-उधर देख रही हैं।

'आइसक्रीम खाओगी?'

'नहीं।'

'क्यों, चलो खाकर देखते हैं, ठीक-ठाक है या नहीं?'

'लेकिन?'

'क्या हर समय पैसा-पैसा करती रहती हो, जिंदगी एक दिन ऐसे ही खत्म हो जाएगी।'

गुरु का कोप-भाजन होना है क्या?

वे बिना प्रतिक्रिया की प्रतीक्षा किए आइसक्रीम के ठेले की तरफ बढ़ गए। वे कोई फिल्मी गीत गुनगुना रहे हैं। आश्वस्त हैं कि अरुंधती जाएगी कहाँ? पीछे-पीछे आना ही उसकी नियति है, उसका सामर्थ्य।

आइसक्रीम-ठेले के पास पहुँचकर उन्होंने दो आइसक्रीम का आर्डर दिया और लड़कियों को सगर्व देखा। सभी लड़कियाँ मुस्करा रही थीं कि अचानक उनमें से एक लड़की ने आइसक्रीम का खाली कप जोर से फेंका। अरुंधती को गुस्सा आया। पलभर को लगा कितनी अशिष्ट है यह लड़की। परंतु नहीं, महान गुरु तुच्छ बातों का प्रभाव नहीं रखते। वे तो मुस्करा रहे हैं।

'इधर सुनो, ये रूमा जलाल है। अब आठवीं में है, है न। बी.एड. के वक्त मैं इनकी क्लास को पढ़ाता था।'

लड़की ने नमस्ते नहीं किया और चौंककर चारों तरफ देखा, फिर अपने पास खड़ी लड़की का हाथ पकड़कर दूर तक कुछ खोजने का अभिनय करते हुए बोली - 'लगता है पापा-मम्मी आगे निकल गए हैं, चलो, चलें।' और बिना किसी की प्रतीक्षा किए वह पीछे मुड़ गई।

जगत के गोल हुए होठों से निकला - 'डायना... बेबी डा... य... ना...'

लड़की मुड़ी नहीं, बल्कि पूरे झुंड की चाल तेज हो गई और धीरे-धीरे झुंड भीड़ में विलीन हो गया। उनके होंठ अब भी खुले थे, जिसमें कोई शब्द अटका... सेक्सी... क्रेजी... । एक अजीब घृणा की लहर से नहा गईं वे।

बड़े बेमन से अरुंधती जगत के साथ आइसक्रीम खा रही थीं कि अचानक उनके हाथों से आइसक्रीम का खाली कप उतनी ही जोर से नीचे गिर पड़ा, जितनी जोर से डायना ने जान-बूझकर फेंका था। वे चौंककर रुखाई से बोले - 'क्या हुआ? कोई देखेगा तो... कुछ सीखो।'

अरुंधती को समझ नहीं आया कि उनके चेहरे पर खिंच आए 'गँवार द ग्रेट' को कैसे पोंछे? अक्सर ही वे गँवारपना दिखा देती हैं और तब अनायास जगत के चेहरे पर उनके लिए 'गँवार द ग्रेट' पढ़ा जा सकता है। कभी कोई बुलाता है तो चौंक कर उसकी तरफ देखती हैं, जैसे सपने से जगाया गया हो। कभी-कभी अपना ही नाम पराया लगने लगता है और वे कुछ बोलती ही नहीं। वे यानी कि गुरु जगत कहते हैं कि कोई इतना भी क्या सोच सकता है? यहाँ तक की बातों के बीच में कुछ और सोचना, शब्दों का खाली-खाली बीत जाना और नाम बुलाए जाने पर चौंकना, ये सब और कुछ नहीं 'गँवार द ग्रेट' के लक्षण हैं।

उनमें दुख है, अफसोस है, चिढ़ और घृणा है, और इससे मिले-जुले वे सारे भाव, जिनके लिए कोई शब्द पर्याप्त नहीं, उनके भीतर उमड़-घुमड़ रहे हैं। न तो यही नियति है और न इतनी ही सामर्थ्य। न केवल इतना सा दुख कि एक सौ एक रुपये अभी खर्च हुए जाते हैं। न इतनी सी तड़प कि किसी छोटी लड़की के पीछे गुरु जगत। बल्कि एक पूरा का पूरा समय है, जिसे अतीत, भविष्य, वर्तमान कहीं भी फिट करके देखा जा सकता है, जो घिसटता हुआ उनके पैरों से बँधा चला आ रहा है - हर जगह, हर समय - यह असीम सा सत्य।

एक दृश्य धीरे-धीरे आकार लेता है। इस दृश्य में हल्की सी शिवली के फूलों की खुशबू है। एक छोटी सी कक्षा तीन में पढ़ने वाली लड़की अपने स्कूल के बच्चों और मास्टरों के साथ टूर पर जा रही है। कुछ दूसरे स्कूल के बच्चे और मास्टर भी साथ हैं। उस शहर का यह पहला वक्त है, जब कुछ स्कूलों ने मिलकर एक साथ टूर पर जाने का यह प्रयोग किया। लड़की चलती बस में खिड़की से झाँककर सड़क पर गुजरते हुए दृश्य और चलते हुए पेड़ देखना चाहती है, पर नहीं, खिड़की की सीट पर पहले से तीन बच्चे एक साथ कब्जा जमाए हैं। लड़की उनके बीच से उझककर बार-बार झाँकने की कोशिश कर रही है। अंततः थककर उदास हो जाती है और आँखें बंद कर बस के चलने

की आवाज को, गति को पकड़ने की कोशिश करने लगती है। लड़की कब की नींद में चली गई है और अब सीट के किनारे से लुढ़कने ही वाली है। तभी एक नौजवान लड़के ने उसे सँभाल लिया और गोद में उठाकर, अपनी सीट पर लाकर लिटा देता है। लड़की चौंककर उठ जाती है। सामने अपरिचित चेहरा है। अपरिचित अपने हाथों से उसे थपकी देता है - 'सो जाओ।' और उसके पैरों के पास की जगह में धीरे से बैठ जाता है। हैरान लड़की नहीं सोती। अपरिचित उसे बताता है कि वह किस स्कूल का मास्टर है। लड़की उठकर बैठ जाती है। अपरिचित एक आत्मीय मित्र में बदल जाता है। कागज पर लिखकर अपना नाम-पता लड़की की स्कर्ट की जेब में डाल देता है।

'पत्र लिखना!'

लड़की उदास हो जाती है। भला बढ़िया सा पत्र वह कहाँ लिख पाएगी?

'जैसा तुम्हें आएगा।'

इस वाक्य में लड़की खुश और आश्वस्त होती है।

टूर में सब जगह लड़की के साथ वही मित्र है।

लड़की उस कागज को हालाँकि भरसक सँभालती रही, जिस पर उस आत्मीय मित्र मास्टर का पता था। पर वह खोजे नहीं मिलता, न कागज, न मित्र।

यह दृश्य दूर तक नहीं ठहर पाता, छिटककर दूर हो जाता है। बल्कि कह लीजिए कि इसे छिटककर दूर होना पड़ता है। कुछ दूसरे दृश्य इतने साफ-साफ और इतने बड़े हैं कि वे पूरी जगह ले लेते हैं। ये दूसरे दृश्य पिछले दृश्यों पर कहीं भारी हैं।

पाँचवी कक्षा में पढ़नेवाली लड़की, उस आदमी की बाँहों की कसमसाहट से छूटकर भागी थी। स्कूल में वह आदमी गणित पढ़ाता था और यद्यपि लड़की उसकी उम्र का सही अंदाज नहीं लगा सकती थी, फिर भी इतना कह सकती थी कि वह उसके पापा जितना बड़ा लगता था। रहा भी हो शायद। लड़की ने पहली बार उसी के मुँह से सुना था 'मिस इंडिया' का संबोधन, और तब तक वह बिलकुल नहीं जानती थी कि यह एक खिताब है, और यह भी नहीं कि सचमुच सौंदर्य प्रतियोगिता जैसा कोई खेल इस दुनिया में होता है।

वह अपनी कक्षा से निकलते ही लड़की को बुलाता और बात करते-करते भूल जाता कि उसे दूसरी कक्षा में जाना है। लड़की को अक्सर वह झक्की और कभी-कभी पागल तक

लगता। कभी लड़की जब अचानक उसके सामने पड़ जाती तो वह जोर-जोर से डाँटने लगता। वह डर जाती। उसके सहपाठी डरकर भाग जाते। वह भी भागती, पर जल्दी से वह लड़की को कंधे से पकड़ लेता और अपनी पैंट के पास उसका मुँह जबरदस्ती जोर से चिपका लेता। फिर उसके डरे हुए चेहरे को देखकर कोमल भावों से भर जाता और गालों को चूमकर कहता - शर्मीली। लड़की को यह और भी बुरा लगता। उसे अध्यापक के पैंट से पेशाब की हल्की सी बदबू आती। वह रोने लगती। रोते हुए दौड़ते हुए अपने साथियों को खोजने लगती।

कब तक रोती लड़की?

लड़की झुँझलाने लगी। वह हरदम गुस्साई रहती। स्कूल में उस अध्यापक को देखते ही कहीं भाग कर छिप जाती। गणित पढ़ना लड़की ने लगभग छोड़ दिया और स्कूल जाने से कतराने लगी। स्कूल न जाने के जितने बहाने लड़की बना सकती थी, बनाती। कभी पेट दर्द का बहाना बनाती, कभी स्कूल के रिक्शे से गिर जाती और चोट लगने का बहाना करते हुए घर पर ही रुक जाती। लड़की ने अपने भरसक बहुत बहाने बनाए। स्कूल से नाम कटवाने की जिद भी की। यह भी कहा कि गणित वाले मास्टर से डर लगता है। इस जिद से समस्या की गहराई में गए बिना पिताजी ने गणित के अध्यापक को घर पर बुलाया और उन्हें लड़की के डरने की वजह से स्कूल न जाने की जिद वाली बात बताई।

'मास्टरजी, आप तो बच्चों को डराकर रखते हैं।'

'नहीं जी, मैं तो बच्चों को बहुत प्यार करता हूँ।'

पिताजी ने लड़की को बुलाया - 'प्रणाम करो मास्टर साहब को। गुरु देवता के समान होता है।'

लड़की ने मजबूरी में अध्यापक को प्रणाम किया। अगर कोई इस छोटी सी लड़की के मन से पूछे तो यह कहेगी कि चूल्हे से चैला निकालकर अध्यापक को पीटते-पीटते खदेड़ने की इच्छा है उसकी। पर उसकी यह इच्छा उसके ही घर में कोई मायने नहीं रखती थी। पिताजी के भय का अधिक मायने था।

'गोलू, चिंटू डरते हैं हमसे? बोलो।'

'हाँ' लड़की ने दृढ़ता से कहा।

अध्यापक को इसकी उम्मीद नहीं थी।

'डरा मत करो।' फिर भी अध्यापक ने कहा और पिताजी की ओर मुड़े - 'बहुत शर्मीली है।'

अध्यापक के जाने के बाद पिताजी ने लड़की की अच्छी खबर ली। दो-चार थप्पड़ मारकर दहाड़े - 'फालतू में बहाना मारती है। इतना बढ़िया टीचर है। अब जो कुछ बोली तो...'

हालाँकि लड़की थप्पड़ और दहाड़ से दहल गई थी, पर फिर भी जिद में ऐंठी दीवार के सहारे खड़ी रही। माँ ने उसे गोद में खींचने की कोशिश की, पर वह इनकार में तनी रही। थोड़ी ही देर में हल्की-हल्की सिसकियाँ लेते हुए बोली - 'अम्मा, मास्टर जी के पैंट से पेशाब की बदबू आती है।' और जोर से रो पड़ी।

माँ कुछ बोल न सकी। दहाड़ते हुए पिताजी सन्न रह गए।

एक शहर था कस्बेनुमा। मेला लगा था वहाँ। उस मोहल्ले के लोग भी एक दिन मेला देखने चलने की तैयारी करने लगे। सारे बच्चे खूब तैयार हुए। एक दीदी थीं, मीनाक्षी शर्मा। उनके पास बारह रंग की बिंदियों वाला डिब्बा था। उसी डिब्बे में से बड़े मनोयोग से दीदी ने लड़कियों की फ्रॉक से मैच कर-करके उन्हें बिंदी लगाई। दीदी के बाल बहुत लंबे थे। लोग कहते थे कि उनकी शादी नहीं हो पा रही है। लड़की को बुढ़ा रहे हैं माँ-बाप। आशीर्वाद में लोग उन्हें 'योग्य वर मिले' कहते, पर आशीर्वाद में कोई दम हो, तब न मिलेगा वर। खैर, बच्चों ने उस वक्त कतई नहीं चाहा कि उनकी शादी हो। उन्हें मालूम था कि शादी के बाद लड़कियाँ चली जाती हैं और वे नहीं चाहते थे कि दीदी उनके बीच से जाए।

कक्षा पाँच पास करके जो लड़की अब छठी में पहुँच गई थी, उसने पीले रंग की लंबी फ्रॉक पहनी थी, जो घर पर सिली गई थी और जिस पर हल्के हरे रंग वाले अंगूर के नकली गुच्छे टाँके गए थे। उसने मचलकर दीदी से पीले रंग की बिंदी लगाने को कहा, पर दीदी ने उसे हरे रंग की बिंदी लगाई, जो पीले फ्रॉक पर लगे नकली अंगूरों के मैच की थी।

दीदी के घर यानी शर्माजी के घर पर हर समय मुर्दनी सी छाई रहती। बच्चे तक उनके यहाँ जाने से कतराते थे। दीदी जब-तब दूसरों के यहाँ बैठी मिलतीं। शायद वह उस मुर्दनी से भागती रही हों। एक दिन वह पीली फ्रॉक वाली लड़की के यहाँ आईं और घंटों

माँ को पकड़कर रोती रहीं और माँ खुसुर-पुसुर कुछ कहती रहीं। बच्चों में से कोई दिखता तो वे पीले फ्रॉकवाली उस लड़की को आवाज पर जोर देकर डाँटती।

'अरुंधती, बच्चों को लेकर बाहर जाओ।'

बाहर जाकर भी बच्चों के कान पर्दे के अंदर की आवाज को सुनने के लिए बेचैन रहते। माँ वैसे भी बहुत धीरे बोलतीं। डाँटने के लिए उन्हें आवाज पर बहुत जोर लगाना पड़ता। ऐसा लगता था कि कभी उनकी आवाज घोंट दी गई थी और अब आवाज तेज बनाने के सारे प्रयत्न व्यर्थ हो जाते थे। माँ को लोग नूतन कहते थे। शक्ल कुछ-कुछ वैसी ही लगती। एक बार इसी बात को लेकर बड़ा हंगामा खड़ा हो गया था। हुआ यह था कि माँ और पिताजी रिक्शे से कहीं जा रहे थे। तभी रास्ते में कुछ लड़कों ने माँ को देखकर कहा- 'यार, वो देख, रिक्शे पे नूतन... '

और फिर इसी बात को लेकर माँ-पिताजी में कई दिनों तक लड़ाई होती रही। पिताजी कई दिनों तक नाराज बने रहे। और माँ का घर से बाहर जाना कम होते-होते नहीं पर अटक गया। हालाँकि पिताजी भी देखने में अच्छे तंदुरुस्त थे और जब कभी लोग उनकी कद-काठी की तारीफ करते, तो वे घर आकर सगर्व बताते और माँ से दाद माँगते। खासतौर पर तब जब घर, खानदान और मोहल्ले की औरतें उनकी तारीफ करतीं, तो वे फूले-फूले घूमते। सारे दिन लोगों को बताते और मौका मिलते ही माँ को जताने लगते कि वे क्या चीज हैं। यदि माँ चुप रह जातीं तो वे तरह-तरह से यह बताते कि कैसे शादी करके उन्होंने माँ का उद्धार किया है। उदाहरणार्थ वे बार-बार यह कहते कि उन्होंने यदि दया करके माँ से शादी न की होती, तो आज माँ किसी 'काने' के पीछे-पीछे घूँघट काढ़े चल रही होतीं। यहाँ तक कि लालटेन लेकर नित्यक्रिया के लिए खेत में जातीं। या फिर दिनभर चिथड़े सीकर कथरी बनाती रहतीं...।

गनीमत थी कि वे माँ को गू-मूत साफ करने वाली नहीं बनाते। माँ उनकी व्यंग्योक्तियों से ऊबकर, अंततः धीरे से यह मान लेतीं कि वही विशिष्ट हैं, गुणवान हैं, परम पुरुष हैं, जिन्होंने उनका उद्धार किया है। हालाँकि इसके भीतर के सत्य से वे उसी समय मुरझाने लगतीं।

बच्चे कभी पिता से यह पूछने का साहस नहीं जुटा पाए कि आखिर वे यदि माँ से शादी न करते तो जो दूसरा माँ से शादी करता, वह 'काना' ही क्यों होता? या माँ को लालटेन लेकर खेत जाने की जरूरत क्यों पड़ती? या फिर वे सारे-सारे दिन कथरी ही क्यों सीती रहतीं? इसका बिल्कुल उल्टा भी तो हो सकता था।

तो माँ के अतिशय धीरे बोलने की वजह से बच्चों को दीदी के रोने का कारण समझ में नहीं आया। पर उसी के बाद दीदी कभी नहीं दिखीं। उसी के बाद शर्मा जी सपरिवार कहीं चले गए थे। या दीदी पहले कहीं चली गई थीं, शर्मा जी कुछ दिन बाद गए, कुछ स्पष्ट नहीं हो सका। अब मोहल्ले में कुछ नए लोग आ गए हैं। अगर कभी शर्मा जी का जिक्र निकल आए तो पुराने लोग अपनी याददाश्त पर जोर डालने लगते हैं और बहुत देर बाद खोए-खोए से कहते हैं - 'हाँ, थे... थे इसी मोहल्ले में... एक बेटी थी उनकी... शादी नहीं कर पाए थे उसकी...'

दीदी की चर्चा होते ही लोग झट से शर्माजी की तस्वीर उतार लेते थे। जिन्होंने उन्हें नहीं देखा था, वे भी एक बूढ़े, अशक्त दाढ़ी और मूँछोंवाले बाप की तस्वीर बनाने लगते थे। मेले में दीदी बराबर बच्चों के साथ रहीं। प्याज काटनेवाला चाकू उन्होंने ही माँ को खरीदवाया था और सभी बच्चों को अपनी जेब-खर्च से मलाई-बर्फ खिलाया था। खुद वे बर्फ नहीं खाती थीं, अतः बच्चों को बर्फ पकड़ाकर वे बड़ों की पल्टन में गुम हो गईं। पीले फ्रॉक पर टँगे हुए हरे अंगूरों वाली लड़की ने बर्फ खाते हुए देखा कि मेले में कुछ दूर खड़ा गणित का वही अध्यापक उसे घूर रहा था। उसके साथ एक सभ्य सी दिखने वाली महिला भी खड़ी थी। तभी एक दूसरी लड़की, जिसने नीले छींटवाला सलवार-कुर्ता पहना था और गले में नीले रंग का सादा दुपट्टा डाले थी, जो अपनी उम्र से अधिक लंबी थी और असल उम्र में पीले फ्रॉक वाली लड़की से कुछ छोटी थी। वह लेस लगे रूमाल से अपना मुँह पोंछते हुए आई और पीले फ्रॉकवाली से सटकर बोली - 'अरी अरुंधती, वो देख, आज तो टीचर की टीचरानी भी आई है। चल यहाँ से भाग लेते हैं, नहीं तो लटक लेगा पीछे-पीछे।'

नीले दुपट्टेवाली लड़की अपनी ही बात पर हँसी, फिर सब बच्चे उसकी बात पर हँसे। केवल पीले फ्रॉकवाली लड़की चुप रही। फिर उसने सोचते हुए कहा - 'नहीं रे, आने दे उसे।'

लड़की अब उस स्कूल से मुक्त थी और अपने को भरसक आराम की दशा में बनाए हुए मलाई बर्फ खा रही थी।

गणित का मास्टर अचानक, तेजी से 'अरे मिस इंडिया' कहते हुए बच्चों के झुंड की तरफ बढ़ा। पीछे-पीछे वही महिला, जो शायद उसकी पत्नी थी। बच्चों ने चौंकने का अभिनय करते हुए उधर देखा और फिर अपनी-अपनी मलाई-बर्फ की डंडी उसी तरफ फेंकी। लड़की ने कनखियों से अपने जाँबाज साथियों को देखा। नजर मिलते ही वे जोर से हँस पड़े और पीछे पलटकर हँसते और शोर मचाते भाग गए।

यह रविवार का दिन था। कमरे की खिड़की से सुबह की ठंडी हवा आ रही थी। यह खिड़की सड़क की तरफर खुलती थी और कई बार हवा के साथ-साथ सड़क के किनारे खड़े पेड़ों के पत्ते भी उड़कर अंदर आ जाते थे।

जगत पंचमढ़ी से लौटते ही सुंदर सपनों में खो गए थे। उन्होंने इस बात पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया कि मेले में अरुंधती भी थीं और उन्हें भी मेले के बारे में कुछ बात करनी हो सकती है या उनमें भी प्रेम की इच्छा जैसा कोई जीवित शब्द फड़क सकता है। वे मुँह उधर करके सपनों में डूब गए थे। वैसे भी इस कीड़े-मकोड़े जैसी जिंदगी में ये थोड़ी देर के सपने ही जीने की ताकत देते हैं। (हवाले से गुरु जगत)

कल देर रात पंचमढ़ी उत्सव देखकर, वहाँ से लौट आने के बाद आज अरुंधती देर तक सोना चाहती थीं। रात-भर वैसे भी उन्हें अपने यथार्थ से टकराते हुए नींद नहीं आई थी। मन ही मन उन्होंने दर्जनों स्कूलों को आवेदन-पत्र लिखे थे, जिसमें अपनी परिस्थिति और मनःस्थिति का भी जिक्र किया था। आज सुबह उन्हें हर हाल में ये आवेदन पत्र कागज पर उतारने थे और कल मटकुली तथा आसपास के स्कूलों में भटकना था। रात-भर उन्हें अपने टाइप न सीख पाने का अफसोस होता रहा था। दुनिया भर की हजारों नौकरियों के लिए मन ही मन उन्होंने अपने को अयोग्य पाया था। क्या करें, क्या न करें, की मनःस्थिति में रात भर तो करवट बदलती रही थीं कि इस जीवन को कहाँ-कहाँ से काटें कि कुरूपता कट जाए और कहाँ-कहाँ से जोड़ें कि जी सकने लायक कुछ जी सकें। सिलाई-बुनाई का जो काम आता था, मटकुली में उसकी किसी को कितनी जरूरत? घर-घर में लड़कियों ने यही, इतना ही तो सीखा था। सो इससे खाना-कमाना छोटी जगहों पर संभव नहीं था। ले-देकर बच जाती थी स्कूल की अध्यापकी। उसके लिए भी कम लंबी लाइन थी क्या! छोटी जगह में ट्यूशन पढ़ा ले जाने की अधिक संभावनाएँ कहाँ? जो हैं भी, वे जगत के हिस्से में हैं। एक विचार जरूर सिर उठा रहा था कि क्यों न बुनाई मशीन पर स्वेटर बुनकर, स्कूल यूनिफार्म के स्वेटर तैयार करके स्कूलों को बेचें। यह विचार था तो सुकूनदेह, पर मशीन के लिए कब से अपेक्षित पैसा जुटा रही हैं वे...

बस अभी घंटा-भर पहले, सवेरे हवा के ठंडे झोकों के साथ उनकी आँख लगी थी कि जगत ने बाँह से हिलाकर उन्हें जाग दिया।

'क्या हुआ?' अरुंधती ने आँख मलते हुए पूछा।

'आज स्वप्नदोष हो गया।'

'अच्छा।'

अरुंधती को लगा शायद कोई बुरा सपना आया होगा। वैसे भी जगत के पास बुरे सपनों की भरमार है।

'भूलकर सो जाइए।'

'भूलकर क्या? देती नहीं हो तो यही होगा।'

जगत की इस झुँझलाहट से अधनींद में भी अरुंधती चौंकी - यह क्या?

जगत मौका मिलते ही अरुंधती को दोष दे देते हैं कि वही हैं, जो कोऑपरेट नहीं करतीं, वरना क्यों इधर-उधर देखेंगे वे। परंतु क्या यही है असलियत? पहले अरुंधती इसी को सच मान-मानकर कोशिश करती रहती थीं, पर उनका मन जानता है कि वे लाख कोशिश करें, जगत अपने सपनों से बाहर नहीं आते। कभी जब मन करता है उनका, तो वे दिन-रात नहीं देखते, बस, बिना किसी भूमिका या संकेत के अचानक अरुंधती की तरफ मुड़ते हैं और अपनी मनमर्जी करके शांत हो जाते हैं। कभी महीनों अपने को आजमाते रहते हैं। कभी अपने ही जाने किन-किन हिसाबों के मारे बड़े तनावग्रस्त रहते हैं, तो कभी किसी दूसरे स्त्री-चित्र से इतने उत्तेजित कि समय का आनंद ही नहीं उठा पाते। क्षण भर में सब खत्म हो जाता है और जगत निराश हो जाते हैं। इस निराशा में वे कई दिनों तक झूलते रहते हैं और मन ही मन कुढ़ती रहती हैं अरुंधती।

कैसे करें कोऑपरेट?

अगर किसी रात जगत बैठक में बैठे कुछ कॉपियाँ जाँच रहे हों या अपने किसी काम में व्यस्त हों और वे उधर अपनी बी.एड. की परीक्षा की तैयारी में पढ़ते-पढ़ते मुँह पर किताब रखे नींद के झोंके में चली जाएँ और इसी वक्त जगत का मन आ जाए तो वे उन्हें झकझोरकर उठा देते हैं।

'शादी किसलिए की है' - कहते हुए बिना उनकी प्रतिक्रिया का इंतजार किए अपनी इच्छापूर्ति करके सो जाते हैं और फिर जगती रह जाती हैं अरुंधती।

मानो कभी जगत ने उन्हें छुआ ही न हो।

कुँवारी रह गई हैं वे अब तक।

कैसे करें कोऑपरेट?

जगत न तो कभी उन्हें अपने सपनों के संसार में आने देते हैं, न कभी तनावों के संसार में, न ही निराशा के द्वंद्व में।

प्रतीक्षा में किनारे बैठी रह गई हैं वे।

प्रतीक्षा भी किसकी?

जो खोजे नहीं मिलता। न जगत के सपनों में सेंध का रास्ता, न अपने सपनों में उनके आने के द्वार।

न पता लिखा वैसा वह कागज, न मास्टर, न मित्र।

निराशा के द्वंद्व में टकराते दो अलग-अलग किनारे।

मानो दो समानांतर रेखाएँ हों, जो पास आने की कोशिश में बगल से गुजर जाती हैं, जिससे जुड़कर भी देह जुड़ नहीं पाती।

इसे ही संसार एक सूत्र में बँधना कहता है?

जगत के छूते ही उनके मन के सारे तार टूट जाते हैं, सारी इच्छाएँ मर जाती हैं।

बस, यह आदमी नहीं। और अगर यह आदमी नहीं तो और कौन?

पुरुष के सुंदर मन के बारे में जब-जब सोचती हैं, कुछ स्पष्ट सा बन ही नहीं पाता। जब भी कल्पना में कोई धुँधला चित्र बनने लगता है तो मास्टर साहब के पैंट में पेशाब की बदबू और जगत की तरह का एक लिजलिजा एहसास एक साथ उभर आता है। देह की सारी इच्छा ध्वस्त।

जगत बिस्तर से उतरकर बाथरूम में चले गए और जल्दी ही बाथरूम से लौटकर बोले - 'ए, वहीं रख दिए है पैजामा, धो देना।'

अधनींद में भी अरुंधती चौंक गई। स्वप्नदोष से भला पैजामे का क्या संबंध? नींद उनकी जा चुकी है। वे उठकर बैठ गईं, फिर असमंजस में बाथरूम में गईं। पैजामा उठाकर देखने लगीं। पैजामे पर कुछ छोटे-बड़े गीले धब्बे पड़े थे। ओह, तो इसे कहते हैं स्वप्नदोष! सुना जरूर था उन्होंने कि युवा लड़कों को, किशोरों को अक्सर स्वप्नदोष की बीमारी हो जाती है, पर आज तक नहीं जान पाई थीं कि यह बीमारी होती क्या है? अब पता चला है। अरुंधती ने पैजामा एक तरफ फेंका और मुँह धोने लगीं।

यह देह की भयानक इच्छा क्यों जगती है उनमें भी। इच्छा होती है कोई प्यार से उन्हें देखे। आँखें आँखों से मिलकर ठहर जाएँ। कोई, जो धीरे से छुए, धीरे से उनकी नाक पर अपने होंठ रख दे, उनकी गर्दन, उनके कंधे, उनकी पीठ, उनकी दे हके एक-एक रोम-छिद्र पर... किसी की गर्म साँस सिहरा जाए। कोई जो देर तक, बहुत देर तक उनके साथ हो... जाने कैसी है देह के भीतर उगी प्रेम की यह पागल इच्छा।

किसी भी भाँति इस इच्छा की एक हल्की सी रेखा भर भी नहीं दिखने दे सकती हैं वे। लोग, जो उनके इर्द-गिर्द हैं, लोग जो उनके परिचय के दायरे में हैं, कभी सहन नहीं कर पाएँगे कि एक औरत, देह की ऐसी इच्छा की बात कर रही है। भला कैसी है वह स्त्री? चरित्रहीन? वेश्या? कैसे समझा सकती हैं वे, अपने इर्द-गिर्द के लोगों को, अपने परिचय के दायरे के लोगों को। यह इच्छा स्त्री को कैसे मथती है? कैसे जागती रह जाती हैं औरतें रात-रात भर। कोई शब्द, कोई भाव भूलकर भी व्यक्त नहीं कर सकतीं। बेचारी सभ्य घरेलू औरतें! और वे सभ्य आजीवन कुँवारी रह गईं लड़कियाँ। हे प्रभु! उनका क्या होता होगा? प्रेम के सपने कैसे और कितना तड़पाते होंगे उन्हें? जीने की यह इतनी सामान्य जरूरत स्त्री के लिए नहीं है! अगर इस जरूरत को झपट लेने की बलवती आकांक्षा पैर फैलाने लगे, तो सबसे पहले उसी की नजर में गिर जाएँगी, जिसके प्रति देह का आकर्षण और प्यार की हिलोरें उठ रही हैं। सारी शिक्षा-दीक्षा, संस्कार सब व्यर्थ चले जाएँगे। मिलेगा दुत्कार और जगत बिना सोचे-समझे काट कर गाड़ देंगे।

मृत्यु के साथ खत्म हो जाएगा इच्छा का यह अध्याय!

भय या मृत्यु में से कोई एक।

मृत्यु से डर लगता है। तो भय में जीयो।

भय से घबड़ाती हो तो मृत्यु के पास जाओ...

किससे कहें? कैसे कहें? हे प्रभु! कहाँ जाएगी यह स्त्री?

बाहर है, सब कुछ है। दहशत में, भय में, छल-कपट में लिपटा हुआ - परत दर परत।

बचपन से लेकर अब तक, जो वे देख रही हैं, जो वे जान रही हैं।

इस इच्छा को नियंत्रित करने की, मारने की कितनी असफल कोशिशें...

वे तमाम दिन, वे तमाम रातें, जब अपने आप से चिढ़ती-खीझती रही हैं वे... ओफ!

अरुंधती ने मुँह धोकर बाथरूम में टँगे शीशे में अपने को देखा। एक मधुर-मादक अहसास उठ रहा है उनमें। संगीत की छोटी-छोटी ध्वनि लहरियाँ उनके आस-पास गूँज रही हैं। कितने ही बनते-बिगड़ते दृश्य रोमांचित कर देनेवाले अहसास से भिगो रहे हैं! उनके होंठ मानों किसी के होंठ खोज रहे हैं। उनकी देह किसी को अपने में भींच लेने को अकुला रही है। रोम-रोम से न जाने कैसी तरंगें आलोड़ित हो रही हैं। अजीब अवश सी होकर उन्होंने अपनी अँगुलियों से अपने होंठ सहलाए! कई बार... बार-बार... ।

जाने कौन अहसास उतर आया है उनके हाथों में... ब्लाउज के ऊपर से ही अपने स्तनों पर हाथ फेरते दंग हो गईं वे - कितना सुंदर है उनका पेट! भला ऐसी भी क्या उम्र हो गई है उनकी? यह देह इतनी सुंदर, प्यारी और पवित्र भला पहले क्यों नहीं लगी?

यह देह, यही आधार है, मन की अतृप्ति इसी में उठा-पटक करती इसे ही अशक्त और बीमार बना देती है। मन की इन उछल-उछल कर उठती तरंगों को समेटकर कहाँ रख दें? कैसे नकार दें भला अपनी ही देह?

जाने कब उन्होंने अपना ब्लाउज उतारा, जाने कब अपने को प्यार करते अपने में डूब गईं - गला, कंधा, पेट, जाँघें... जाने किस आवेग में अपने हाथों अपने को जोर से भींच लिया...।

सोलो सेक्स!

खिड़की पर लगा साड़ी का पर्दा एक तरफ है। हवा जालियों से टकरा-टकराकर अंदर आ रही है। अरुंधती अपना बैग कंधे पर टाँग चुकी हैं। वे आज उस महिला के यहाँ कढ़ाई-सिलाई का कुछ काम लेने जा रही हैं, जो जबलपुर, भोपाल जैसे बड़े शहरों से आए थोक काम को हल्का करने के लिए कुछ औरतों को और अधिक सस्ते दामों पर देती हैं। इससे ज्यादा का स्कोप यहाँ नहीं है। हाँ, बुनाई सेंटर चलानेवाली स्कीम उनके दिमाग में अब अधिक प्रखर होने लगी है। जब निकली ही हैं तो लगे हाथ इस बारे में भी बात चलाकर ही लौटेंगी।

जगत सिर झुकाए कमरे से बरामदे तक टहल रहे हैं। लगता है सुबह के स्वप्नदोष का मलाल अब तक उनके साथ है। ठीक इसी समय खिड़की के सामने से खड़-खड़ करती एक साइकिल गुजरी, जिसपर कोई लड़की बैठी है। दुपट्टा उसके गले से क्रास बनाता हुआ कमर पर बँधा है। जगत अचानक मुड़े और झटके से दरवाजे के बाहर जाकर भर आँख साइकिलवाली लड़की को निहारने लगे। लड़की शायद साइकिल सीख रही है।

फिर उसी सड़क से आ रही है, फिर जा रही है। उसके चेहरे पर खुशी है, आत्मविश्वास है। हवा के वेग से उसका पतला कुर्ता उसके बदन से चिपका हुआ है, जिसके कारण भीतर पहने ब्रेसियर की पूरी कटिंग उभर आई है। पीछे से साफ-साफ जाना जा सकता है कि उसका हुक कहाँ है। लड़की के बाल चोटी की शक्ल में बँधे हैं, जो पीठ पर हिलते हुए उस हुक को कभी छिपा लेते हैं, तो कभी दिखा देते हैं। जगत मुस्करा रहे हैं। मंत्र-मुग्ध हैं। अब पूरा रविवार उनका अच्छा बीतेगा। ईश्वर को धन्यवाद!

अरुंधती कंधे पर बैग टाँगे दरवाजे से बाहर आकर ठिठक गई हैं। वे कभी जगत को देखती हैं, तो कभी उस सड़क को, जिस पर से अभी-अभी लड़की गुजर चुकी थी। जगत कभी अपने बालों में हाथ फेर रहे हैं, तो कभी छाती सहला रहे हैं। वे धीरे-धीरे सड़क पर आगे बढ़ रहे हैं। लड़की को साइकिल सिखाने की इच्छा उनसे एक कदम आगे चल रही है। वे बेहद मुलायम स्वर में मुस्कराकर आवाज देते हैं - 'शालू! उतनी तेज चलाओगी तो गिर जाओगी। रुको, मैं आता हूँ।'

https://www.hindiadda.com/katha-ke-gairajaruri-pradesh-mein/